National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2026; 1(65): 366-368
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

अखिलेश कुमार बसेडिया
शोधच्छात्र,
शिक्षाशास्त्रविद्याशाखा,
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय,
नासिक परिसर, नासिक

Correspondence:
अखिलेश कुमार बसेडिया
शोधच्छात्र,
शिक्षाशास्त्रविद्याशाखा,
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय,
नासिक परिसर, नासिक

भारतीय दर्शन में ज्ञान एवं ज्ञानार्जन प्रक्रिया

अखिलेश कुमार बसेडिया

शोधसार

भारतीय दर्शन में ज्ञान को मानव-जीवन के परिष्कार एवं परम पुरुषार्थ की प्राप्ति का प्रमुख साधन माना गया है। यहाँ ज्ञान का स्वरूप केवल बाह्य विषयों की सूचना अथवा बौद्धिक संचय तक सीमित नहीं है, अपितु वह ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान के पारस्परिक सम्बन्ध से सम्पन्न एक व्यापक प्रक्रिया है। मनुष्य बाह्य जगत् से ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से सम्पर्क स्थापित करता है, किन्तु इन्द्रियजन्य संवेदनाएँ स्वतः ज्ञान में परिणत नहीं होतीं। मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त की सक्रिय सहभागिता से संवेदना क्रमशः ग्रहण, विचार, निश्चय और संस्कार का रूप धारण करती है। भारतीय दार्शनिक चिन्तन की विशेषता यह है कि वह ज्ञानार्जन में बाह्य साधनों की अपेक्षा आन्तरिक करणों की सक्रियता और परिष्कार को अधिक महत्त्व देता है। प्रस्तुत शोधालेख में भारतीय दर्शन के परिप्रेक्ष्य में ज्ञान के स्वरूप, ज्ञानार्जन के करणों तथा ज्ञान-निर्माण की आन्तरिक प्रक्रिया का विवेचन किया गया है।

कूटशब्द- ज्ञान, ज्ञानार्जन, भारतीय दर्शन, ज्ञानेन्द्रिय, अन्तःकरण, मन, बुद्धि, चित्त।

प्रस्तावना

ज्ञान मनुष्य के समस्त व्यवहार का मूलाधार है। व्यक्ति का चिन्तन, निर्णय, कर्म और व्यक्तित्व उसके ज्ञान से प्रभावित होता है। इसीलिए भारतीय दर्शन में ज्ञान का प्रश्न केवल यह जानने तक सीमित नहीं रहा कि मनुष्य क्या जानता है, अपितु यह भी विचार किया गया कि वह किस प्रकार जानता है, ज्ञान के साधन क्या हैं और प्राप्त ज्ञान की प्रामाणिकता का आधार क्या है। भारतीय परम्परा में ज्ञान को मानव-जीवन के परिष्कार का महत्त्वपूर्ण साधन माना गया है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है- **"न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।"**[1] इस दृष्टि से भारतीय ज्ञानमीमांसा अत्यन्त सूक्ष्म एवं व्यापक है।

सामान्यतः यह प्रतीत होता है कि ज्ञान बाह्य विषयों के सम्पर्क से उत्पन्न होता है। मनुष्य किसी वस्तु को देखता है, ध्वनि को सुनता है अथवा किसी पदार्थ का स्पर्श करता है और उसे उस विषय का ज्ञान हो जाता है। किन्तु ज्ञानार्जन की वास्तविक प्रक्रिया इससे अधिक जटिल है। केवल नेत्रों के सामने किसी वस्तु की उपस्थिति उसका ज्ञान सुनिश्चित नहीं करती। यदि मन उस समय अन्यत्र प्रवृत्त हो, तो दृश्य उपस्थित होने पर भी उसका स्पष्ट बोध नहीं होता।

भारतीय दर्शन इसी समन्वित दृष्टि से ज्ञानार्जन की व्याख्या करता है। ज्ञान का उदय ज्ञेय विषय, ज्ञान के साधन और ज्ञाता की आन्तरिक सक्रियता के पारस्परिक सम्बन्ध से होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में

ज्ञान-प्रक्रिया के इन तत्त्वों का उल्लेख करते हुए कहा गया है- **"ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना।"**[2] इस प्रक्रिया में इन्द्रियाँ विषयों से सम्बन्ध स्थापित करती हैं, मन संवेदनाओं को ग्रहण करता है, बुद्धि उनका परीक्षण एवं निश्चय करती है और चित्त अनुभवों को संस्कार के रूप में धारण करता है। इस प्रकार ज्ञानार्जन बाह्य जगत् से प्रारम्भ होकर मनुष्य की अन्तःचेतना तक पहुँचने वाली एक क्रमिक प्रक्रिया है।

भारतीय दर्शन में ज्ञान का स्वरूप

भारतीय दर्शन में ज्ञान का अर्थ वस्तु के यथार्थ स्वरूप का बोध है। ज्ञान के द्वारा व्यक्ति अपने से भिन्न जगत्, वस्तुओं, घटनाओं और सम्बन्धों को समझता है। इसी के आधार पर वह उचित-अनुचित का विवेक करता है तथा अपने व्यवहार की दिशा निर्धारित करता है। अतः ज्ञान केवल सूचना नहीं, अपितु बोध और विवेक की अवस्था है।ज्ञान की प्रक्रिया में तीन तत्त्वों की उपस्थिति स्वीकार की जा सकती है-जानने वाला, जानने योग्य विषय और दोनों के मध्य स्थापित होने वाला ज्ञान। भारतीय दर्शन में इन्हें क्रमशः ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान कहा गया है। बाह्य विषय स्वयं ज्ञान नहीं है और न केवल इन्द्रिय-संवेदना को पूर्ण ज्ञान कहा जा सकता है। विषय का यथार्थ बोध तभी होता है, जब प्राप्त संवेदना का आन्तरिक स्तर पर ग्रहण, संगठन, परीक्षण और निश्चय हो।भारतीय दृष्टि में ज्ञान का मूल्य उसके जीवनगत प्रभाव से भी निर्धारित होता है। ऐसा ज्ञान जो केवल स्मृति में संचित रहे, किन्तु व्यक्ति के विवेक और आचरण को प्रभावित न करे, वह अपूर्ण माना जाता है। वास्तविक ज्ञान व्यक्ति के दृष्टिकोण को परिष्कृत करता है और उसके व्यवहार में परिवर्तन लाता है। भारतीय दर्शन में सम्यक् ज्ञान की व्यापकता का संकेत देते हुए श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है-

"सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्॥"[3]

इस प्रकार भारतीय दृष्टि में ज्ञान केवल बौद्धिक उपलब्धि न होकर व्यक्ति की दृष्टि, विवेक और जीवन-व्यवहार के परिष्कार का साधन है।

ज्ञानार्जन के बाह्य और आन्तरिक करण

ज्ञानार्जन की प्रक्रिया अनेक करणों के सहयोग से सम्पन्न होती है। बाह्य जगत् से सम्पर्क स्थापित करने वाले प्रमुख साधन ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इनके माध्यम से मनुष्य रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श का अनुभव करता है। ज्ञानेन्द्रियाँ बाह्य विषयों और आन्तरिक चेतना के मध्य प्रवेश-द्वार का कार्य करती हैं।किन्तु इन्द्रियों की क्रियाशीलता मात्र से ज्ञान की पूर्णता सम्भव नहीं है। बाह्य संवेदनाओं को ग्रहण करने और उनका अर्थ निर्धारित करने के लिए अन्तःकरण की आवश्यकता होती है। भारतीय चिन्तन में मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त को अन्तःकरण के प्रमुख कार्यात्मक पक्षों के रूप में समझा गया है।मन विषय की ओर प्रवृत्त होकर संवेदनाओं को ग्रहण करता है। वह इच्छा, भावना तथा संकल्प-विकल्प का क्षेत्र है। बृहदारण्य-कोपनिषद् में मन के विविध कार्यों का उल्लेख करते हुए कहा गया है-

"कामः सङ्कल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरि-त्येतत् सर्वं मन एव।"[4]

बुद्धि प्राप्त विषयों का परीक्षण, विश्लेषण और निश्चय करती है। अहंकार अनुभव को व्यक्ति की अपनी सत्ता से सम्बद्ध करता है, जबकि चित्त पूर्व अनुभवों एवं संस्कारों को धारण करता है। ज्ञानार्जन में इन सभी का पारस्परिक सहयोग आवश्यक है। किसी एक करण की निष्क्रियता सम्पूर्ण प्रक्रिया को प्रभावित कर सकती है।

ज्ञानार्जन की प्रक्रिया

ज्ञानार्जन का आरम्भ बाह्य विषय और इन्द्रिय के सम्पर्क से होता है। किसी वस्तु का रूप नेत्र के माध्यम से, ध्वनि श्रोत्र के माध्यम से तथा अन्य गुण सम्बन्धित ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किए जाते हैं। यह ज्ञान की प्रारम्भिक अवस्था है, जिसमें विषय संवेदना के रूप में उपस्थित होता है। दूसरे स्तर पर मन उस संवेदना की ओर प्रवृत्त होता है। ध्यान की उपस्थिति विषय को चेतना के क्षेत्र में लाती है। मन की अनुपस्थिति में इन्द्रिय-संवेदना स्पष्ट ज्ञान का रूप ग्रहण नहीं कर सकती। यही कारण है कि अनेक बार व्यक्ति सामने उपस्थित वस्तु को देखता हुआ भी उसका बोध नहीं कर पाता।इसके पश्चात् बुद्धि सक्रिय होती है। वह प्राप्त विषय का निरीक्षण, परीक्षण, तुलना और विश्लेषण करती है। नवीन अनुभव को पूर्व ज्ञान के साथ सम्बद्ध करके उसका अर्थ निर्धारित किया जाता है। समानता और भिन्नता का बोध, कारण और परिणाम का सम्बन्ध तथा उचित-अनुचित का निर्णय बुद्धि के स्तर पर सम्पन्न होता है। सांख्यकारिका में बुद्धि के निश्चयात्मक स्वरूप को **"अध्यवसायो बुद्धिः"**[5] कहा गया है। इस प्रकार संवेदना बौद्धिक परीक्षण के पश्चात् व्यवस्थित ज्ञान का रूप ग्रहण करती है।ज्ञानार्जन की प्रक्रिया यहीं समाप्त नहीं होती। प्राप्त

अनुभव चित्त पर प्रभाव उत्पन्न करता है। पुनरावृत्ति और अभ्यास से यह प्रभाव दृढ़ होकर संस्कार में परिणत हो सकता है। योगदर्शन में स्मृति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा गया है- **"अनुभूत-विषयासम्प्रमोषः स्मृतिः।"**[6] यही स्मृति और संस्कार भविष्य के ज्ञानार्जन, रुचि और व्यवहार को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक नवीन ज्ञान पूर्व अनुभवों से प्रभावित होता है और स्वयं भविष्य के अनुभवों की पृष्ठभूमि भी निर्मित करता है

ज्ञानार्जन में करणों की सक्रियता

सभी व्यक्तियों के पास ज्ञानार्जन के साधन होते हुए भी उनकी ग्रहणशीलता समान नहीं होती। इसका कारण करणों की सक्रियता, एकाग्रता, अभ्यास और प्रशिक्षण में भिन्नता है। जिस व्यक्ति की इन्द्रियाँ सजग, मन एकाग्र, बुद्धि विवेकशील और स्मृति सुदृढ़ होती है, वह विषय को अधिक स्पष्टता से ग्रहण करता है।

ज्ञानार्जन की क्षमता को अभ्यास द्वारा विकसित किया जा सकता है। निरीक्षण से देखने की क्षमता, श्रवणाभ्यास से सुनने की सूक्ष्मता, चिन्तन से मन की एकाग्रता तथा तर्क और विश्लेषण से बुद्धि की क्षमता विकसित होती है। इस दृष्टि से शिक्षा का उद्देश्य केवल अधिकाधिक विषय-सामग्री प्रदान करना नहीं, बल्कि ज्ञानार्जन के करणों को सक्षम बनाना भी है।

भारतीय दार्शनिक दृष्टि शिक्षा को ज्ञान देने की एकपक्षीय प्रक्रिया नहीं मानती। विद्यार्थी स्वयं ज्ञानार्जन की प्रक्रिया का सक्रिय सहभागी है। शिक्षक विषय प्रस्तुत कर सकता है, किन्तु वास्तविक ज्ञान विद्यार्थी की आन्तरिक सक्रियता से ही निर्मित होता है।

अतः शिक्षा में ध्यान, निरीक्षण, प्रश्न, चिन्तन, तर्क, अभ्यास और स्वाध्याय को पर्याप्त स्थान मिलना चाहिए। केवल बाह्य साधनों की वृद्धि से शिक्षा प्रभावी नहीं हो सकती। आधुनिक तकनीकी उपकरण ज्ञानार्जन में सहायक अवश्य हैं, किन्तु वे मनुष्य के आन्तरिक करणों का स्थान नहीं ले सकते। यदि विद्यार्थी का मन अस्थिर और बुद्धि निष्क्रिय है, तो प्रचुर साधनों की उपलब्धता भी सार्थक ज्ञान का निर्माण नहीं कर सकती।

भारतीय दर्शन की ज्ञानार्जन सम्बन्धी दृष्टि वर्तमान शिक्षा के लिए यह महत्त्वपूर्ण संकेत देती है कि विद्यार्थी को ज्ञान का निष्क्रिय ग्रहणकर्ता न बनाकर सजग निरीक्षक, स्वतन्त्र चिन्तक और विवेकशील ज्ञाता बनाया जाना चाहिए। शिक्षा की सफलता इस बात में है कि वह मनुष्य की अन्तर्निहित ज्ञान-शक्तियों को जागृत और विकसित करे।

निष्कर्ष-

भारतीय दर्शन में ज्ञानार्जन एक बहुस्तरीय एवं समन्वित प्रक्रिया है। इसमें बाह्य विषय, ज्ञानेन्द्रियाँ और अन्तःकरण परस्पर सहयोग करते हैं। इन्द्रियाँ संवेदनाएँ ग्रहण करती हैं, मन उन्हें चेतना में उपस्थित करता है, बुद्धि उनका परीक्षण एवं निश्चय करती है और चित्त अनुभवों को धारण कर भावी ज्ञान की पृष्ठभूमि निर्मित करता है। इस प्रकार ज्ञान न तो केवल बाह्य साधनों का परिणाम है और न केवल बौद्धिक क्रिया का, बल्कि मनुष्य की सम्पूर्ण आन्तरिक व्यवस्था की सक्रियता का प्रतिफल है।

भारतीय दार्शनिक दृष्टि का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि वह ज्ञानार्जन के साधनों की संख्या बढ़ाने की अपेक्षा स्वयं ज्ञाता की क्षमता के विकास पर बल देती है। अतः शिक्षा का वास्तविक प्रयोजन केवल ज्ञान प्रदान करना नहीं, बल्कि मनुष्य को ज्ञान ग्रहण करने, उसका परीक्षण करने और विवेकपूर्वक जीवन में उसका प्रयोग करने में समर्थ बनाना है। ज्ञान की सार्थकता तभी है, जब वह सूचना से बोध, बोध से विवेक और विवेक से परिष्कृत आचरण की दिशा में अग्रसर हो।

सन्दर्भ

1. श्रीमद्भगवद्गीता, 4.38 ।
2. श्रीमद्भगवद्गीता, 18.18।
3. श्रीमद्भगवद्गीता, 18.20।
4. बृहदारण्यकोपनिषद्, 1.5.3।
5. ईश्वरकृष्णकृत सांख्यकारिका, 23।
6. पातञ्जलयोगसूत्र, 1.11।